बनाम जन

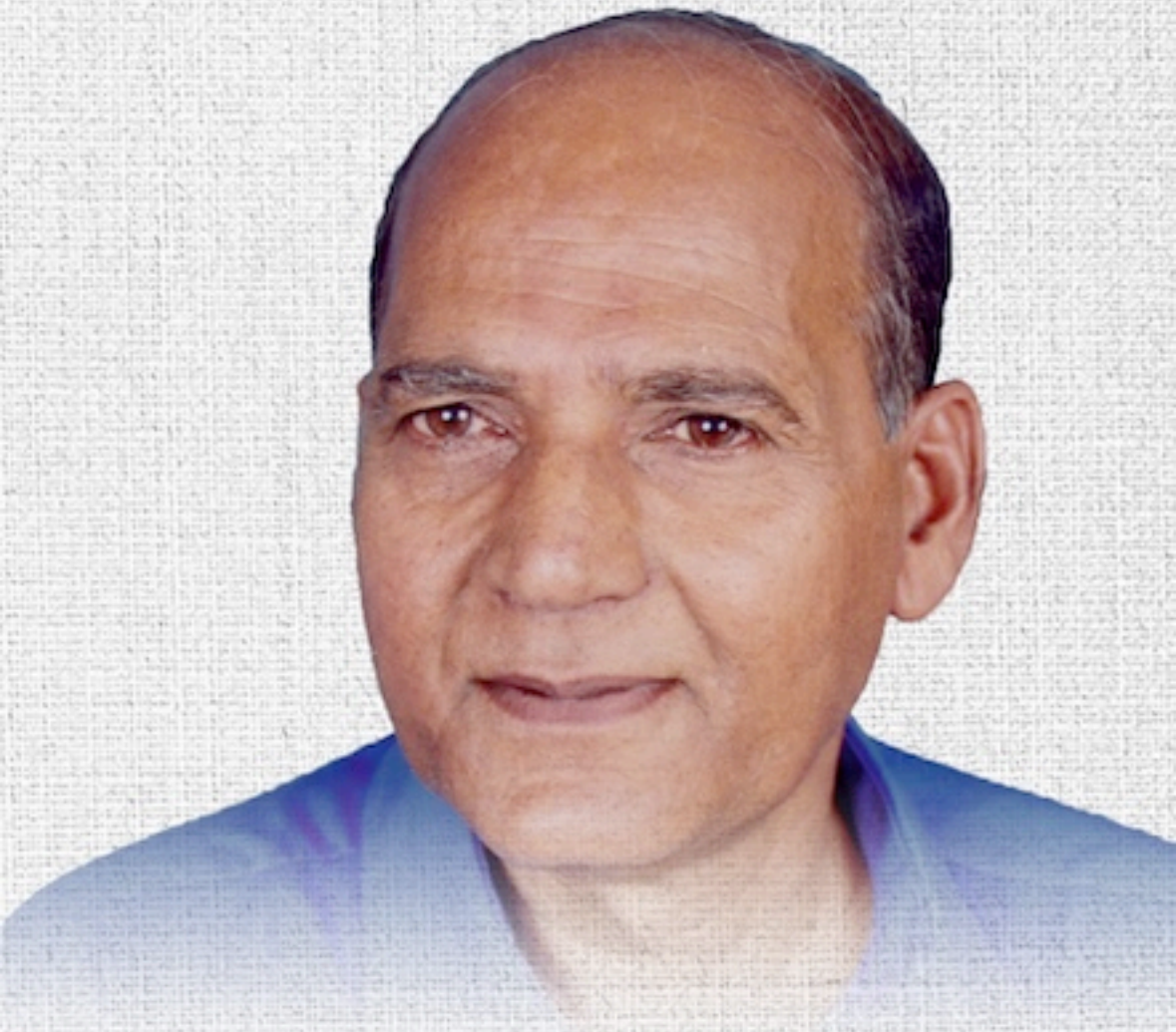

इतिहास से पहले

स्वयं प्रकाश का अप्रकाशित अप्रसारित नाटक

बनास जन

साहित्य-संस्कृति का संचयन

इतिहास से पहले

स्वयं प्रकाश का अप्रकाशित अप्रसारित नाटक

परामर्श : प्रो. काशीनाथ सिंह, वाराणसी
डॉ. ममता कालिया, दिल्ली
डॉ. दुर्गाप्रसाद अग्रवाल, जयपुर
प्रो. माधव हाड़ा, उदयपुर
श्री महादेव टोप्पो, राँची

सम्पादक : पल्लव

सहयोग : गणपत तेली, भँवरलाल मीणा

सहयोग राशि : 50 रुपये (यह अंक)–डाक द्वारा मँगवाने पर–80 रुपये
100 रुपये (संस्थागत)–डाक द्वारा मँगवाने पर–130 रुपये
7000 रुपये–आजीवन (व्यक्तिगत)
12,000 रुपये–आजीवन (संस्थागत)

समस्त पत्र व्यवहार : पल्लव
393, डी.डी.ए., ब्लॉक सी एंड डी
कनिष्क अपार्टमेंट, शालीमार बाग, दिल्ली-110088
व्हाट्सएप : +91–8130072004 (केवल लिखित संदेश हेतु)
ई-मेल : banaasjan@gmail.com
वेबसाइट : www.notnul.com

कृपया रचनाएँ भेजने के लिए सिर्फ ई-मेल का उपयोग करें। आग्रह है कि इस संबंध में पूछताछ न करें। 'बनास जन' में सभी रचनाओं का स्वागत है।

नोट : प्रकाशित रचनाओं से संपादक की सहमति अनिवार्य नहीं।
संपादन एवं सह संपादन पूर्णतः अवैतनिक।
समस्त कानूनी विवादों का न्याय क्षेत्र दिल्ली न्यायालय होगा।

स्वामी-संपादक-प्रकाशक-मुद्रक पल्लव द्वारा 393, डी.डी.ए., ब्लॉक सी एण्ड डी, कनिष्क अपार्टमेंट, शालीमार बाग, दिल्ली-110088 से प्रकाशित और सचदेवा आफसेट प्रिंटर्स, बी-39, झिलमिल इंडस्ट्रीयल एरिया, जी.टी. रोड, शाहदरा, दिल्ली-110095 से मुद्रित।

BANAAS JAN
Peer Reviewed Journal
(A Collection of Literature)

ISSN 2231–6558

अपनी बात

स्वयं प्रकाश के निधन (2019) के तुरंत बाद कोरोना आ गया और कुछ ऐसा हुआ कि उनके अप्रकाशित-अप्रसारित लेखन की खोज-खबर लेना भी संभव न हो सका। आखिर अब जाकर यह संभव हुआ तो पता चला कि स्वयं प्रकाश ने अपनी लगभग सभी चीजें नष्ट कर दी थीं। सारे पत्र, पांडुलिपियाँ और अन्य सामग्री। मुझे मालूम था कि उनके पास एक उपन्यास था जिसे वे पूरा कर रहे थे और जो उस घर की कथा कहता था जिसमें इंदौर में व्यतीत उनके बचपन का संसार था। इसी तरह उनके उपन्यास 'बीच में विनय' का एक बड़ा भाग सम्पादित कर छोड़ दिया गया था जिसे वे फिर किसी नए रूपाकार में ढालने का सोचते थे। उनके छोड़े कागजों में यह सब नहीं था।

स्वयं प्रकाश को अपनी मृत्यु का पूर्व अहसास हो गया था और शायद वे नहीं चाहते थे कि उनकी ऐसी आधी अधूरी रचनाएँ छपे। उन्होंने एक बार कहा भी था कि जिन रचनाओं को किसी लेखक ने अपने जीते जी छपवाना ठीक नहीं समझा उन्हें उसके मरते ही छपवा देना कैसी श्रद्धांजलि है? मालूम हुआ कि जब वे अंतिम इलाज के लिए मुंबई जा रहे थे तब उनके कमरे में फाड़े हुए कागजों का एक बड़ा ढेर था।

तब भी न मालूम क्यों एक पांडुलिपि मिली, जिसका नाम है--इतिहास से पहले। यह नाटक लगभग 1967-74 के मध्य लिखा गया था और संभव है कि इसका अंतिम रूप देने में उनके किसी लेखक मित्र ने सहयोग किया हो क्योंकि अंतिम पन्नों पर वर्तनी उनकी नहीं है। शायद स्वयं प्रकाश इसे छपवाना चाहते रहे हों और इसी कारण वे इसे नष्ट नहीं कर सके अन्यथा और कागजों की तरह यह भी समाप्त हो जाती।

यह नाटक आजादी के बाद नए बन रहे भारतीय समाज में व्याप्त हो रहे भ्रष्टाचार, निराशा और नाकारापन को दर्शाता है। वे आजादी के बाद बनाए गए नये दृश्य को 'नाटक' कह रहे हैं। नाटक का एक पात्र नवीन कहता है, ''क्या ये जिंदगी भर यही नाटक देखते रहना चाहते हैं जो हम सत्ताईस साल से दिखाते आ रहे हैं। अगर नहीं चाहते तो ये लोग खामोश क्यों है? कुछ बोलते क्यों नहीं? सोचते क्यों नहीं? सोचते क्यों नहीं कि इन्हें क्या चाहिए?''

स्वयं प्रकाश संवादधर्मी लेखक थे। यह नाटक उनकी इस कला का श्रेष्ठ उदाहरण बन गया है। पाठक जानते ही हैं कि कहानी के बाद उन्हें सबसे अधिक जो विधा प्रिय थी वह नाटक ही थी। उन्होंने कई नाटक लिखे और वे मंचित भी हुए।

उनकी 80वीं जयंती पर पाठकों को यह उपहार।

पल्लव

इतिहास से पहले

पात्र परिचय

भरत	-	एक अकर्मण्य आदमी। उम्र 35 वर्ष।
प्रगति	-	भरत की पत्नी। उम्र 27 वर्ष।
रत्ना	-	सेठ की बीबी। भरत की पड़ोसन।
नवीन	-	रत्ना का भांजा। विद्यार्थी।
अभय	-	रहीस उद्योगपति। भरत का दोस्त।
रामसेवक सिंह	-	भरत के चाचा। नेता।

डॉक्टर, नर्स व लाइटमेन, साजिंदे, पर्दा उठाने वाले इत्यादि।

प्रथम अंक

दृश्य--भरत-प्रगति का घर। मंच के बीच में एक दीवार है। बायीं ओर एक बड़ा कमरा। पीछे दीवार से सटी एक आलमारी। आलमारी के ऊपरी दो खानों में बहुत-सी किताबें भरी हुई हैं। आलमारी और दरवाजे के बीच एक पुरानी लकड़ी की कुर्सी रखी हुई है। कुर्सी के ऊपर आईना लगा हुआ है। बायीं दीवार से लगी हुई एक खाने की मेज है जिस पर प्लास्टिक के फूलों का एक गंदा गुलदस्ता रखा हुआ है। इस दीवार पर एक वॉयलिन टँगा हुआ है। आगे की ओर बिना हत्थे की एक कुर्सी रखी हुई है।

दाहिने भाग में--पीछे के आधे भाग में रसोईघर है। बीच में दो चद्दरों को जोड़कर बनाया एक पर्दा लटक रहा है। आगे बीच की दीवार से सटा एक पलंग और पर्दे से सटा एक सोफा दर्शकों की ओर मुँह किए हुए रखा है। सबसे दाहिनी दीवार पर बाहर जाने का रास्ता है।

बीच की दीवार है नहीं। प्रकाश-व्यवस्था से ऐसा आभास होता है कि है।

भरत मलमल का मैला, ढीला कुर्त्ता और काली पैबन्द लगी चुस्त पतलून पहने है। कनपटी के बाल सफेद हो चले हैं। पैंतीस वर्ष की उम्र में ही बूढ़ा लगने लगा है। बाल रूखे और उलझे हुए। प्रगति ने सस्ती लेकिन सलीके की साड़ी पहन रखी है। सफेद साड़ी सफेद ब्लाउज। शायद बीमारी और धकान के कारण अपनी उम्र से कुछ ज्यादा की लगती है। पर्दा खुलने से पहले स्त्री-पुरुषों के ठहाकों के बाद सिसकियाँ सुनाई देती हैं। एक करुण वॉयलिन और धीरे-धीरे पर्दा खुल जाता है। सारे मंच पर अँधेरा है। बिना हत्थे की कुर्सी पर भरत अकडू बैठा है। उस पर ही प्रकाश पड़ रहा है। पर्दा खुल जाता है। वॉयलिन बन्द हो जाता है।

भरत : लो... *(धीमे स्वर में...)* ऊँघते हुए-से। फिर एक नाटक शुरू हो गया। हम तो ये नाटक करते-करते तंग आ गये...। पी.ए. के सामने नाटक, केबिनेट के सामने नाटक, पार्लियामेंट के सामने नाटक, जनता के सामने नाटक... यहाँ तक कि अपने बच्चों के सामने भी नाटक। *(मुस्कुराकर)*... पर बच्चे बड़े तेज हैं बच्चू ! वो तुम्हारे चक्कर में नहीं आने के...। एक-दो शो तो देखेंगे... फिर हूटिंग कर देंगे। हू ऽऽऽऽ *(एक पैर नीचे लटका कर)* इस दुनिया का राजा बनना भी एक सिरदर्द है। पर हमें इस नाटक से, इस रोशनी से, इस कुर्सी से इतनी मोहब्बत हो गयी है कि इसे छोड़ने को भी जी नहीं करता।

(कुछ रुककर) खैर! हमारा क्या है? जब तक नाटक चलेगा नाटक ही करेंगे। *(दोनों पाँव लटकाकर तनकर बैठ जाता है। भाषण देने के-से स्वर में)*

...लेडीज... एण्ड जेण्टलमन... *(विंग में देखकर)* मुस्कुराकर आर ''दे रीयली लेडीज??... .. आर दे रीयली जेण्टलमन?? ....*(दाढ़ी खुजाता हुआ)* परहेप्स... मेबी.. बट... वेल... *(पूर्ववत)* बहनों और भाइयों... अँ.... *(थोड़ी देर चुप रहकर सोचता है।)* लोगो... *(हँसकर)* न बहनो न भाइयो... सिर्फ लोगों.... भीड़ों... ओनली मास... *(हँसते-हँसते अचानक गंभीर हो जाता है)* बहनो और भाइयो... *(विनम्रता से)* ये तो आपको मालूम ही होगा कि आज हम यहाँ किसलिए इकट्ठा हुए हैं। हम यहाँ पन्द्रह अगस्त *(या जिस तारीख को भी शो हो रहा हो।)* मनाने के के लिए इकट्ठा हुए हैं। सवाल उठता है हम पन्द्रह अगस्त *(बायें हाथ की हथेली पर दाहिने हाथ का मुक्का मारते हुए)* क्यों मनाते हैं? *(विनम्रता से)* जवाब

आता है इतिहास साक्षी है *(जोर से)* इतिहास साक्षी है तवारीख...गवाह है हिस्ट्री... टेल्स अस... *(नारा लगाने के स्वर में)* इं...क...ला...ब... *(अँधेरे में कुछ दबी हँसी सुनायी देती है। भरत चौंकता है। खड़े होकर और ज्यादा जोश में)* जो हमसे ट...क...रा...एगा...

(अँधेरे में एक नारी स्वर की मुक्त खिलखिलाहट सुनायी देती है)

भरत : *(बिल्कुल बुझती-मरती आवाज में कुर्सी पर बैठते हुए)* मिट्टी...में...मिल...जाएगा...

(खिलखिलाहट एक समूह की हँसी में बदल जाती है। भरत आहत होकर उठता है और वॉयलिन लाकर बिना सुर-लाल के बजाने लगता है। धीरे-धीरे मंच पर इस भाग में प्रकाश फैल जाता है। पीछे की कुर्सी पर प्रगति सिर झुकाए बैठी स्वेटर बुनती दिखाई देती है। अचानक वह धीरे-से खाँसती है। भरत चौंककर वॉयलिन बजाना बंद कर देता है और उठकर प्रगति के पास जाता है।)

भरत : प्रगति

(प्रगति ध्यान नहीं देती। भरत लौटता है व फिर घूमकर खड़ा हो जाता है)

भरत : *(तीखे स्वर में)* अभी तुम मुझ पर हँस रही थीं।

प्रगति : *(सिर उठाकर सहज स्वर में)* नहीं तो।

भरत : क्या?

प्रगति : मैंने कहा नहीं तो।

भरत : कैसे-नहीं-कर्ता। तुम मुझ पर हँस रही थीं।

प्रगति : मैं नहीं हँस रही थी।

भरत : कैसे नहीं हँस रही थीं?

(प्रगति भरत की ओर प्रश्नवाचक दृष्टि से देखकर सिर झुका लेती है।)

भरत : क्या?

प्रगति : कुछ नहीं।

भरत : कैसे कुछ नहीं।

(प्रगति झुँझलाकर स्वेटर रख देती है और खड़ी हो जाती हैं।)

प्रगति : तुम्हारे लिए चाय बना दूँ?

(भरत का सारा गुस्सा ठंडा हो जाता है। हारकर अपनी कुर्सी की ओर आते हुए)

भरत : नहीं। तुम हर बार चाय की बात करके मुझे खामोश कर देती हो। यू आलवेज सप्रेस माई रिवोल्यूशन।

प्रगति : *(कुछ मुस्कुराकर)* बिना चाय पिये रिवोल्यूशन हो जाएगा तुमसे?

भरत : *(चिढ़कर)* तुम तो मेरा मजाक उड़ाओगी ही। हमेशा।

प्रगति : क्यों?

(भरत कोई उत्तर नहीं सोच पाता)

प्रगति : *(गम्भीर होकर)* बोलो! मैं क्यों तुम्हारा मजाक उड़ाऊँगी हमेशा। भरत?

भरत : क्योंकि तुम्हें मेरी बातें पसन्द नहीं हैं।

प्रगति : बातें? बातों से क्या होता है? बातें मुझे किसी की भी पसन्द नहीं है। मुझे पसन्द है काम, जो तुम्हें पसन्द नहीं हैं।

भरत : कौन कहता है?

प्रगति : मैं कहती हूँ।

भरत : मैं कहती हूँ?